शोध मंथन, 2018 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 40908

'मांड़नों में बसा नारी का रचनात्मक लोक संसार'

डॉ0 अर्चना जोशी
व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, राजस्थान
इमेल:drajoshi14@gmail.com

सारांश

राजस्थान जिसका कि बहुत प्राचीन इतिहास है, लोककला के क्षेत्र में धनी रहा है। राजस्थान की लोक चित्रकला भारत की लोक कला का महत्वपूर्ण भाग है। राजस्थान लोककला के क्षेत्र में अपनी प्राचीन परम्पराओं को आज भी जीवित रखे हुए है जिसमें महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि राजस्थान के गांव–गांव और ढाणी–ढाणी के परिवारों में रहने वाली हर नारी लोक चित्रकला का पाठ पढती है ।

नारी ह्रदय की गूढ़ता को कभी मापा नही जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि हर नारी हर समय अपने ह्रदय में उठ रहे भावों को शब्दों का स्वरूप नहीं दे सकती। अतः अतिव्यस्त जीवन को जीते हुए अपने भीतर के गूढ़ भावों को उसने जब तब मौका मिला जहाँ–तहाँ अंकित कर अभिव्यक्ति दे डाली, जिन्हे ढूढ़ने हमें शहर की कला वीथिकाओं में सहेज कर रखी गई चित्र मालिकाओं में देखने की आवश्यकता नहीं, अपितु उसके दर्शन हमें किसी भी गांव के घर–आंगन में नित नवीन रूपकारों को ग्रहण करते मांडणों में सहज ही हो सकते हैं।

राजस्थान के विस्तृत ग्रामीण अंचलों में लोक संस्कृति का यह रूप–स्वरूप गोबर पीलीमिट्टी से लिपे–पुते झोपड़ों, टापरो और घरों पर कुंकुम, गेरू, खड़िया एवं सूखे–गीले रंगो के माध्यम से रेखांकित किया जाता है । यह रेखाकंन हमारी आंचलिकता की विविधता और विशिष्टता का प्रतिनिधित्व करता है। गांव के चित्रित आकारों से युक्त मुहल्लों में एक चित्रवीथिका का आभास कराती यह समृद्ध परम्परा किसी अनुष्ठान, मंगलभावना, लोक विश्वास, लोकचेतना और जीवन की निरन्तरता का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है । साधारण से दिखाई देने वाले कुछ सीमित रंगो से अंकित इन असाधारण माण्डणों में नारी के हुलसित मन के उद्गारों को अभिव्यक्ति मिली है।

प्रमुख शब्द–*नारी, माण्डना, लोक संस्कृति*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः
डॉ0 अर्चना जोशी

'मांड़नों में बसा नारी का रचनात्मक लोक संसार'

शोध मंथन, मार्च 2018,
पेज सं0 1–7

Article No. 1
http://anubooks.com
?page_id=581

21वीं सदी की समसामयिक कला की महिला कलाकार अपनी अद्वितीय पहचान बनाने में सफल रही है। चाहे वो मूर्ति कला का क्षेत्र हो या चित्रकला का, स्थापत्य का क्षेत्र हो या ज्वेलरी डिजाइनिंग का, हर स्थान पर महिला कलाकारों ने अपनी श्रेष्ठता की दस्तक दी है। और जहां तक लोककला का प्रश्न है, इसका तो सिंचन ही महिला ने किया है। इस दृष्टि से तो समाज की प्रत्येक महिला चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, न्यूनाधिक एक सृजनकर्ता तो है ही।

लोककला के वटवृक्ष की जड़ों का गहरापन मोहनजोदड़ो, हड़प्पाकालीन सभ्यता तक है। सिंधुघाटी सभ्यताकालीन भग्नावशेष, भग्न मृणभाडों और नारी द्वारा उपयोग से जुड़ी हुई अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर चित्रांकित आकार मिले हैं। आज की राजस्थानी आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों की निवासी महिलाओं द्वारा कच्चे घरों (झोपड़ों) की गारे की दीवारों पर, दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर लगभग उसी तरह के अलंकरण सजे–संवरे देखे जा सकते हैं। यह पीढी–दर–पीढी नारी द्वारा आगामी संततियों को हस्तान्तरित करने के सबल प्रमाण देते हैं। सौंदर्य से उसका लगाव, मंडन कर्म की मशाल का उसके द्वारा पीढी दर पीढी हस्तान्तरण आज भी अनवरत है।

राजस्थानी शब्द "माण्डणां" संस्कृत के मंण्डन से लिया गया है जिसका अर्थ होता है अलंकृत करना। इसे महाराष्ट्र में रंगोली, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, उडीसा में "आलता" के नाम से पुकारा जाता है। धरातल के आधार पर मांण्डणों को प्रमुखतः है दो भागो में विभाजित किया जा सकता है :–

1. भित्ती पर चित्रित किये जाने वाले मांडणें
2. आंगन पर चित्रित किये जाने वाले मांडणे

उत्सवों–त्योहारों, विशेष वारों पर नारियाँ घर को मांडणों द्वारा अलंकृत करती है । चाँदा, देहरी, देहरा, आलिया, दरवाजे के ऊपर के भाग पर पथवारी, कमरे के भीतर चौक, गाय के सींग और चबूतरे अंगनाई आदि घर के सभी प्रमुख स्थानों पर स्थानोपयुक्त विभिन्न भांति के मांडणे बनाये जाते है। मांडणें विशेष अवसरो की सज्जा के अभिन्न अंग होते है ।

आंगन के मांडने व भित्ती के मांडने मुख्यतः दो तरह के आकारों में बद्ध होते हैः–

1. ज्यामितीय और प्रतीकात्मक
2. आकृतिमूलक

मांडणों को 'कामसूत्र' में वर्णित चौसठ कलाओं में सम्मिलित किया गया है। उनमें चौथी कला 'आलेख्यम् बताई गई है तथा नौवीं कला 'मणि भूमि का कर्म' फर्श को नाना रंगों के पत्थरों से सजाना और छठी कला मांडणे की है।

रेखांकन को मनुष्य का स्वाभाविक गुण कहा जा सकता है। प्राय देखने में आता है कि कोई भी व्यक्ति जब एकाकी होता है तो रेखांकन उसका सहारा बन जाता है। कुछ लोग तिनको से आकृतियां बनाते हुये देखे जा सकते है तो कुछ ऐसे भी क्षण आते है जब कोई व्यक्ति पानी से जमीन पर लकीरे खीचते हुये दिखाई देता है या गलियारे की धूल पर अंगुलियों से आडी–तिरछी रेखायें खींचता हुआ। ये सब एक ही प्रवृति की द्योतक होती है। ज्यामितीय रेखांकन से विविध आकृतियों का सौद्धेश्य या निरूद्देष्य सृजन कला की परिभाषा में ही समन्वित होता है।

भारतीय नारी ने अपने दैनिक कर्म में कला का यही पक्ष सम्मिलित कर लिया है। दक्षिण भारत के परिवारो में स्त्रियों द्वारा देहरी के बाहर किया गया अंकन महाराष्ट्र की रंगोली, मेंहन्दी मांडणे की

ज्यामितीय कुशलता, महावर की मोटी–मोटी रेखाएं, महिला मन की कलाप्रियता और कला प्रदर्शन में मिलने वाले सहज सुख की ओर इंगित करते है। अतः राजस्थान में ही नहीं बल्कि समग्र देश के परिवेश में देखे तो मांडणों की प्रथा प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रही है। मांडणों से अभिप्राय अलंकृत परिकल्पनाओं से हैं, फिर वे चाहे आंगन पर, दीवारों पर या हाथ–पैरों पर महावर के रंग से व्यंजित हुई हो। ये हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक कला बन गई। यही कारण है कि इसे चौसठ कलाओं में परिगणित किया गया और आज भी इसका अस्तित्व बना हुआ है।

आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों यथा अग्नि, इन्द्र, सुर्य, वरूण आदि के उपासक थे और समय–समय पर इन शक्तियों का आशिर्वाद प्राप्त करने के लिय यज्ञ, हवन आदि किया करते थे। हवन वेदी को वे तरह–तरह की रेखाओं त्रिकोण, वृत्त और आयत की शक्ल में विभिन्न अनाजों, आटे, हल्दी, कुंकुम और फूल–पत्तियों से सजाया करते थे। अनाज के दानों से बनाये गये परिकल्पन नवगृहों को अभिव्यक्ति करते थे ।

शास्त्रोल्लास और 'प्रयोग पारिजात' नामक पुस्तक में नव गृहों का वर्णन मिलता है। जहाँ पृथक–पृथक देव की उपासना के लिये उन स्थानों को अलग–अलग बांट दिया जाता था और इन्हे 'चंदन" और "अगर के चूर्ण के रंगों से सजाया जाता था। महाकवि शुद्रक ने'मृच्छकटिकम' नाटक में बली पूजा के लिये निर्मित भूमि का चित्रण कुछ इसी प्रकार किया है।

महाकवि कालीदास ने बलीपूजा स्थल को गंगा और यमुना की उपमा से उपमित किया है। चंदन का श्वेत रंग, और अगर का श्याम रंग इसके प्रतीक हो गये इस स्थल को कालीदास ने भक्ति के नाम से सम्बोधित किया है। रघुवंश के तेरहवें सर्ग में और उसके टीकाकार 'मत्स्यनाथ ने भी भली–भांति इस तथ्य को विवेचित किया है। सजावट की प्रवृति धीरे–धीरे हमारे जीवन में समाहित हो गई, एक अंग बन गई और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के रूप में घुल–मिल गई। चूंकि सजावट का क्षेत्र घर और पास पड़ोस तक सीमित रहा। अतः इस कार्य में महिलाओं ने रूचि पूर्वक भाग लिया । आज भी महिलाएं अपने दैनिक गृहस्थ जीवन में व्यस्त रहते हुये भी इस परम्परा को पूर्ण रूप से कायम रखे हुये है।

भारत एक विशाल देश है और इसके विभिन्न प्रान्तों के अपने रीति–रिवाज, रहन–सहन एवं परम्पराएं है फिर भी शादि–विवाह, उत्सव–त्यौहार और मांगलिक अवसरों पर महिलाएं लीपन–पोतन करके घर आंगन की दिवारों को सुन्दर मांड़नों से सुसज्जित करती हैं। कई जातियों में तो यह रिवाज भी देखा गया है कि आंगन में झाड़ू लगाने के बाद नित्य प्रति ही उसे धोकर मांडणें बनाए जाते है। कहीं कहीं ये आटे, हल्दी, कुंकुम् से तो कही खड़िया, हिरमिच से बनाए जाते है।

विधि एवं सामग्रीः–

मांडणे बनाने से पहले आंगन को समतल व स्वच्छ बनाने के लिये उसे दड़ा जाता है। सूख जाने के बाद पीली मिट्टी जिसे 'मरडा' कहते है और गोबर से सूती देकर लीपा जाता है। पीली मिट्टी से लीपना शुभ माना जाता है और पवित्र भी। आज भी जब यह आंगन गीला रहता है तो इस पर अनाज के दाने डाल दिये जातो है क्योंकि इस को सूना रखना अपशकुन माना जाता है। जब यह आंगन सूख जाता है तब इसके ऊपर खड़िया मिट्टी और गेरू से तरह–तरह के मांडणें मांडे जाते है।

खड़िया के प्रकारः–

मांडणा मांडने की खड़िया के कुछ प्रकार होते है :–

1. मंगरोप की खड़िया :–

मंगरोप में जो कि राजस्थान के भीलवाडा जिले में एक छोटा सा ग्राम है, खड़िया की खान है। यह अपनी सफेदी, चमक, चिकनाहट और मुलायमपन के लिये पूरे राजस्थान में प्रसिद्ध है ।

2 कठोर खड़ियाः–

इस प्रकार की खड़िया को कठोर होने के कारण दो दिन पहले पानी में भिगोया जाता है और घरेलू बनाया जाता है। यह राजस्थान की कई खानों में पाई जाती है।

3. पाण्डुः–

यह खड़िया की घटिया किस्म है। यह सफेदपन की जगह पीलापन लिये होती है। साधारण लोग इससे ही काम चला लेते है।

इस का रंग लाल होता है यह राजस्थान की कई खानों से निकाला जाता है। इसे आंगन को लीपने के काम में लाई जाने वाली पीली मिट्टी को लाल रंग देने के काम में लाया जाता है। इससे दिवार के निचले हिस्से को जो कि आंगन से सटा रहता है, छः इंच तक रंगा जाता है जिससे सफेद दिवार पर 'पोते निकालना' कहा जाता है। इससे राजस्थानी ग्रामीण नारी के रंग संयोजन के प्रति गहरी समझ प्रदर्शित होती है।

विधिः–

मांडणों को, तूलिका समान पतली लकड़ी की डंडी पर रूई लपेट कर, हिरमिच रंग को किसी प्याले में पीस कर उसमें डुबोकर बनाया जाता है। कई सिद्ध खियाँ अनामिका अंगूली से भी आंगन के माड़णें बनाती है। हिरमिच से, जो कि आंगन में लीपे गये रंग से कुछ अधिक गहरा होता है, एक इंच चौड़ी पट्टी के अंकन द्वारा मन चाहे मांडणें के आकारो का सृजन कर उसके पास–पास में सफेद खड़िया के घोल से रेखाएं खीची जाती हैं। मांडणों को, हमेशा केन्द्र से शुरू करके बाहर की ओर बढ़ाया जाता है। मांडणो का आकर्बाण इनका अलंकरण ही नहीं अपितु आकारों का स्वतंत्र सफल प्रयोग है। जो प्रकृति के आकारों का स्थानान्तरित स्वरूप है जिसमें वस्तुओं के गुण को रखते हुये नये आकारों का सृजन किसी शुभ अवसर पर प्रतीकात्मक रूप में तथा अलंकरण हेतु किया जाता है। पगल्या, पदचिन्ह लक्ष्मी आगमन के प्रतीक के रूप में रथ, लक्ष्मी के वाहन के रूप में स्वास्तिक शुभ चिन्ह आदि के अनेक प्रतीक देखे जा सकते है। इसी भांति अनेक रूपाकारों के अलंकृत आकार देखने को मिलते हैं। भिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले पशु पक्षी, नाहर, बन्दर, मोर आदि का खूब प्रयोग मिलता है। परिवेश के प्रति इनकी संवेदनशीलता के आधार पर नये–नये आकारों का सृजन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता इन मांडणों में रहती है ।

विशेष बात यह है कि कुछ प्रमुख प्रतीकों की पुनरावृत्ति प्रायः सब जगह मिलेगी परन्तु बाहरी रूप व्यक्ति विशेष के साथ बदलता रहता है। महिलाये वस्तु के विशेष गुण को केन्द्रित कर सृजन करती है जिसके आधार पर उन्हें पहचाना जा सकता है। इनमें वस्तु का सरलीकृत व अमूर्त रूप मिलता है। मांडणे भरने का ढंग, उनको बढाने विकसित करने का ढंग, सबका अपना–अपना होता है जो कि हमेशा इन रूपाकारों को सजीव बनाये रखता है। घर का आंगन हो या कोना, बाहर की चौखट हो या चबूतरा, भीतें या दीवारी किनारा, ये कभी भी सूने नही छोड़े जाते । हर सुबह महिलाएं उन पर अवश्यक कुछ न कुछ मांडती है । कच्चे घरों के सजे चूल्हे भी किसी शिल्प से कम नही लगते । इनकी चौखट के किनारो पर बने मांडणें जमीन पर अलंकरणों से बिछाये गलीचे देहात के घरों की सुसज्जा ही नही करते वरन् आकर्षक वैभव प्रदान करते है।

मांडणो के कई नाम है। इन नामों से इनहे समझ लिया जाता है। ये कुवल्या और मात्र बेल अथवा बूटा ही नही होते । मांडणों के सामान्य नामों में झंवरा, कुवल्या, बीजणी, फूलड़ी, फिणी, लडडू, घेवर, मोर मोरनी, चौपड़, फूलकली, पंचफूल, डाबा, पगल्या, दीया आदि–आदि को गिनाया जा सकता है। मांडणों का नाम तथा परिवार होता है इनकी रचना और वर्जना के नियमोपनियम होते है। इनका अंकन देख कर उस परिवार की जाति तक का पता लगाया जा सकता है।

1. दीवार पर के माडणें:

यह परम्परा बहुत प्राचीन है। जब जब घर में कोई मंगल कार्य होता है तो आंगन में मांडणे मांडे जाते है, लेकिन इसके साथ–साथ घर के प्रमुख द्वार को भी फूल पत्तियों की बंदनबार बांध कर तथा केले के पत्तों से सजाया जाता है और दरवाजे के दोनो तरफ कुछ स्थानीय परम्परागत चित्रकार दीवार को मांडणों से अंलकृत करने का कार्य करते है। गांव में यह कार्य स्त्रियाँ अपने ही हाथों से करती है। किसी पतली तूलिका के रूई लपेटकर व गेरू या हिरमिध के रंग से इसे बनाती है और फिर अपनी इच्छा के अनुकूल इसमें लाल, हरा, पीला, सिन्दूरी और नीला रंग भर कर इन्हें पूर्ण करती है।

प्रायः देखा गया है कि सम्पन्न जातियों के घरों में चौक के मांडणों की बहुलता होती है और गरीबों के छप्परों में दीवारों के चित्रांकनों की प्रधानता होती है। कुछ ऐसे समुदाय है जिनमें घरों का चित्रांकन करने में महिलाओं को विशेष महारथ हासिल है। जिनमें कुस्तला, गंबई क्षेत्र, जयपुर से सवाई माधोपुर के मार्ग के मध्य पड़ने वाले ग्राम प्रमुख हैं।

मोर मोरडी के मांडणों के 100 से अधिक प्रकार एक ही गांव में देखे जा सकते है, जिनमें पशु पक्षी, फूलड़ी का मोर, भींत का मोर, पछीत का मोर, मोर–मोरडी, मुडिया मोरडी सक्करपारों की मोरडी के मांडणें कहीं भी मिल जाते है। अकेला मयूर, नृत्य करता मयूर, पीठ को चोंच से छूता मोर और मोती चुगता मोर और ऊचीं चोंच किये हुये मोर–मोरड़ी भी मांडणों के बीसियो मयुराकंनो में से कुछ है। भीत के खास मांडणों में – कुबल्या, कलश, सुआ, मोरडी, चौपड़, सेवरा, गमला, मोटर, रेलगाडी इत्यादि प्रमुख है।

2. आंगन के मांडणेः–

प्रायः सभी अवसरों पर घरों में भी मांडणें मांड़े जाते है। उत्सवों, पर्वो व त्यौहारों की दृष्टि से हम इन मांडणों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैंः–

घर में शिशु के जन्म पर पगल्ये, शादी विवाह पर बनाये जाने वाले पगल्ये रेलगाड़ीरथ तथा अन्य सजावट के मांडणे जैसे–हतडी, साध्या, गलीचा और फूलडियाँ इत्यादि बनाये जाते हैं। इन माण्डणों और बेलों को विभिन्न प्रकार से भरा जाता है।

मकर संक्रान्ति के अवसर पर :–

मकर संक्रान्ति के अवसर पर प्रायः फीणियां और लडूड के मांडणे व पतंग आदि मांडे जाते हैं।

होली के अवसर पर :–

होली के त्यौहार पर विशेष तौर पर चंग के मांडणें व ढोल के मांडणें पगल्या चोक, सितारा, पत्ती का फूल चौक गलीचा, सूरज कलशी, डाबा चौक, छःबारिया, फूलजडाऊ, कुवल्या बनाये जाते है।

शीतलामाता के मांडणें:–

इस दिन शीतलामाता जी की पूजा की जाती है तथा विभिन्न प्रकार के मांड़णों से भूमि को सजाया जाता है। इस समय के विशेष मांडणे है चौक चोखूटा आदि । पगल्या 91 चारू जी का पगल्या।

गणगौर के माण्डणें :

गणगौर के अवसर पर बनाये जाने वाले मांडणों में प्रमुख है बीजणी, चौपड चौक, फूलडी, घेवर, घेवर केरी का जोड, चौखुटा, बाजोट, मोतीडा बाजोट, गोर, बेसणा, सेवरा, आकड–बाकड, पगल्या आदि प्रमुख है।

तीज के मांडणेः–

तीज के अवसर पर लहरिया चौक, फूल, कोण की फूलडी, चौपड, लहरदार चौपड चकरी, घेवरफूल्या, आदि मांडणें प्रमुख रूप ये बनाये जाते है ।

श्रवण कुमार के मांडणें :–

राखी के अवसर पर महिलाये श्रवण कुमार के मांडणें मांडती है।

दीवाली के मांडणें :–

इसी प्रकार दीवाली व उसके आसपास के त्याहोरों पर विशेष प्रकार के मांडणे मांडे जाते है। दीवाली हिन्दूओं का महत्वपूर्ण त्यौहार है। इस अवसर पर सभी हिन्दू महिलायें अपने घरों को लीप–पोत कर सुन्दरता से सजाती है। रात्रि में दीपक जलाती है। इस अवसर पर अधिक संख्या में मांडणें बनाये जाते है। ये कई प्रकार के होते है जैसेः चारदीवला, आठ दिया, फूलरी चौक, पगल्या चौपड पगल्या, हटडी, आठ पंखुडी का चौक, सात साध्या, चकरी, फूलडी, रामा पगल्या. हीड व पगल्ये, फूलबीजणी आठ पंखी चौक, दीया इत्यादि । लक्ष्मी जी की बेल, लगताफूल, चारफूल, फूल व चोक चखूंटा ।

दीवाली पर लक्ष्मी जी के स्वागत में घर की देहरिया विशेष प्रकार के पगल्यों और मांडणें से सजायी जाती है। गेरू के अतिरिक्त लाल, पीले, हरे रंग में भी इन मांडणें की सज्जा देखी जा सकती है। इस अवसर पर कमरे या चबूतरे के सम्पूर्ण आंगन को पूर्ण रूप से भरकर मांडा जाता है। जिससे यह दृश्य एक गलीचे सा प्रतीत होता है। इस समय के अन्य मांडणें इस प्रकार हैं साथ्याफूलड़ी डाबा का जोड़ साथ्या का जोड़ खुडताल का जोड़ कमल का फूल एक बीजणा डाबा चौक, चार बीनणी का पगल्या, डमरू, पान हटडी, बैगन बीट और दिवाली का प्रतीक एक दिया, सात दिये ।

दीवाली के ग्यारह दिन बाद जब देव उठनी एकादशी पूजन का त्यौहार आता है तो कल–कल का मांडण तथा पंचतीर्थ के प्रतीक पुष्कर की पेडी का मांडणा घर पर मांडा जाता है ।

मांडणें के उद्रम के साथ–साथ बहुत सी किवदन्तियां जुड़ी है। कहा जाता है कि लक्ष्मण की खींची हुई रेखा में वह शक्ति थी कि रावण कुटिया में नहीं घुस सका । एक अन्य प्रचलित दंत कथा के अनुसार कृष्ण के विछोह में तडपती गोपियां समय काटने के लिए प्रधरती पर विभिन्न आकृतियां अंकित करती थी। यह भी कहा जाता है कि राम चौदह वर्ष बाद अयोध्या आये थे इसकी खुशी मनाने के लिए सारे राज्य में घरों की सफाई और उनको लिपने–पोतने और आंगन को सुन्दर ढंग से सजाने के लिए स्त्रियों ने तरह–तरह के मांडणे मांड़े थे । आज भी अयोध्या और चित्रकूट में औरते सबसे पहले उठकर घर बाहर बुहार कर गोबर और पीली मिट्टी का घोल बनाकर घर का बाहरी चौक लीपती है और उसके ऊपर चाँवल आदि के आटे को कई तरह के रंग में रंग लेती है। चौक पर विभिन्न सुन्दर डिजायने बना देती है जो मन भावना होती है। इन स्त्रियों की यह मान्यता है कि राम–सीता लक्ष्मण किसी समय भी आ सकते है। राजस्थान में भी चौक पूरने का यह रिवाज प्रचलित है । अनके अवसरों पर यथा–शादी, बच्चे के जन्म पर सूरज पूजन के अवसर पर चौक पूरना शुभमाना जाता है ।

विवाह के मांडणेः–

विवाह के अवसर पर पगल्या, देहरी की बेल सहित पूरा घर ही मांडा जाता है, जिसमें सात थालियां, कलश आदि मांड कर उनमें चिरम भरी जाती है, जोड़े के चारो पैरों के चिन्ह व कुंकुम् भरी जाती है। गाडीचट्टा कचनार का फूल, कंघा चकड़ी, कवल्या, चकरी का जोड, आदि शादी के अवसर पर मांण्डे जाते है ।

राजस्थान की स्त्रियों गृहस्थ जीवन में अतिव्यस्त रहकर भी कलापूर्ण मांडणो की रचनाकरती है। जिसमें उनकी पवित्रत, मंगल–कामना और साधना की विशेष छाप होती है। राजस्थानी लोक मानव की सहज झलक हमें इन मांडणो में देखने को मिलती है।

मांडणों में सरल और कठिन दोनों ही प्रकार की रेखाओं का प्रयोग होता है। दरअसल इनमें प्रयोग किये जाने वाले रंग और रेखाएं नारी विशेष की मनःस्थिति का दर्पण होती है। गहरे रंग और उलझी हुई रेखाएं यदि जटिल मन के प्रतीक है तो हलके रंग और सरल रेखाएं व्यक्तित्व की सहजता को उजाकर करती है। घर की सुन्दरता में चार चाँद लगाने वाले ये मांडणें शगुन के प्रतीक रूप माने जाते है। गृहस्थी की सुख समृद्धि और मंगलकारी भावना इसमें व्यंजित होती है।

राजस्थान में मांडणें बनाने की कला घर की चतुर और अधेड़ महिलाओं से कुमारियों को विरासत में मिलती है इसके लिए कन्याओं को किसी स्कूल या पाठशाला में जाने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि घर या आंगन ही इनका शिक्षा केन्द्र होता है। शुभ अवसरों पर चतुर सुहागन से कलश और मांडणें बनवाये जाते है तथा उन्हें नकद दक्षिणा दी जाती है।

मांडणो द्वारा विभिन्न जाति व क्षेत्र के लोग एक तो आचार विचार द्वारा अपने घर–आंगन को सजाते ही है पर इसके अतिरिक्त मांडणे नयी पीढी के लोगों का चित्रित पुस्तक की भांति एक तरह से दृश्य कला की शिक्षा देकर वंश परम्परा से अवगत कराते है।

अपने आवास को स्वच्छ कर मांडणों से सजाकर हर महिला स्वयं को सुखी, ऐश्वर्यशाली संपन्न और चतुर मानकर पूर्णरूप से मानसिक संतुष्टी पाती है। अपनी दैनिक जीवन की समस्त समस्याओं की उलझनों को, मांडनो की तैयारी, बनावट और सजावट की संतुष्टि में, तिरोहित कर परिवार के जुड़ाव का केंद्र बनी रहती है।

संदर्भः–

1. Curt Ant Maury: Folk Origins of Indian art, New Delhi, 1969.
2. Dutt, C.C.: The Culture of India, Bombay, 1960.
3. Dutt, B.N.: Indian art in Relation to Culture, Calcutta, 1956.
4. भानावत, महेन्द्र – रामदला की फड़, उदयपुर, 1968, भारतीय लोक कला मण्डल
5. भानावत, महेन्द्र – संस्कृति के रंग, उदयपुर, 1979, भारतीय लोक कला मण्डल
6. शर्मा, गोपीनाथ – देवनारायण रो भारत, उदयपुर, 1972, भारतीय लोक कला मण्डल
7. शर्मा, देवीलाल – लोक कला निबन्धावली, लोक कला मण्डल, उदयपुर, 1957
8. सत्यप्रकाश – राजस्थानी भित्ति कला की परम्परागत चित्र निर्माण पद्धति, 1964–65
9. सांभर, देवीलाल – लोक कला की पृष्ठभूमि, आकृति, 1967, अंक–2